भारतीय दर्शन में प्रत्ययवाद की गत्यात्मक दृष्टि

(Bhartiya Darshan me Pratyaywad ki Gatyatmak Drishti)

Shruti Sharma, Research Scholar

Department of Philosophy,

University of Allahabad,

Prayagraj, Uttar Pradesh.

Mobile No. 8601792747

E-mail Id- shrutisharma34567@gmail.com

.

भारतीय दर्शन में प्रत्ययवाद की गत्यात्मक दृष्टि

सारांश

भारतीय दृष्टि 'बाहर से अन्दर जाने की है, वह तथ्यों को समझने हेतु जिन प्रत्ययों का सहारा लेता है वे अमूर्त होते है तथा तथ्यों को अर्थ प्रदान करते हैं। मानव सत् के स्वभाव की बौद्धिक खोज में, पहले बाह्य जगत को ही जानने का प्रयास करता है। जैसाकि कठोपनिषद् का कथन है कि– "मानव प्रारंभ करने के हेतु पहले बाहर ही झांकता है क्योंकि उसकी इन्द्रियाँ बहिर्मुखी है। किसी भी विशेष सिद्धांत को ठीक से समझने के लिए हमें उसकी गत्यात्मकता का ज्ञान अवश्य होना चाहिए। प्रस्तुत शोध पत्र में हम भारतीय दर्शन की चिंतन परम्परा में प्रत्ययवाद के विकास को तीन चरणों चरणों में विभक्त कर समझने का प्रयास करेंगे। भारतीय दर्शन में सर्वप्रथम प्रत्ययवादी अवधारणा का पूर्वाभास उपनिषदों की चिंतन प्रणाली में प्राप्त होता है। अपने विकास के दूसरे चरण में भारतीय प्रत्ययवाद बौद्ध दर्शन के महायान संप्रदाय के दार्शनिकों से जुड़ा हुआ है तथा अपने तीसरे और अंतिम चरण में प्रत्ययवाद अद्वैत वेदान्त में परिलक्षित होता है जिसके पहले प्रमुख प्रतिनिधि गौडपाद थे।

शब्द कुंजी – प्रत्ययवाद, उपनिषद्, बौद्ध दर्शन, महायान सम्प्रदाय, अद्वैत वेदांत।

भारतीय दर्शन में प्रत्ययवाद की गत्यात्मक दृष्टि

भारतीय दृष्टि 'बाहर से अन्दर जाने की है', वह तथ्यों को समझने हेतु जिन प्रत्ययों का सहारा लेता है वे अमूर्त होते है तथा तथ्यों को अर्थ प्रदान करते है। मानव सत् के स्वभाव की बौद्धिक खोज में, पहले बाह्य जगत को ही जानने का प्रयास करता है। जैसाकि कठोपनिषद् का कथन है कि– "मानव प्रारंभ करने के हेतु पहले बाहर ही झांकता है क्योंकि उसकी इन्द्रियाँ बहिर्मुखी है।[1] किसी भी विशेष सिद्धांत को ठीक से समझने के लिए हमें उसकी गत्यात्मकता का ज्ञान अवश्य होना चाहिए। भारतीय दर्शन की चिंतन परम्परा में प्रत्ययवाद के विकास को तीन चरणों में विभक्त किया जा सकता है। भारतीय दर्शन में सर्वप्रथम प्रत्ययवादी अवधारणा का पूर्वाभास उपनिषदों की चिंतन प्रणाली में प्राप्त होता है। अपने विकास के दूसरे चरण में भारतीय प्रत्ययवाद बौद्ध दर्शन के महायान संप्रदाय के दार्शनिकों से जुड़ा हुआ है तथा अपने तीसरे और अंतिम चरण में प्रत्ययवाद अद्वैत वेदान्त में परिलक्षित होता है।

उपनिषदों में प्रत्ययवादी अवधारणा–

पाश्चात्य दर्शन में प्रत्ययवादी विचारधारा का आरम्भ और विकास बड़े ही व्यवस्थित ढंग से हुआ है परन्तु भारतीय दर्शन के संदर्भ में ऐसा कहना कठिन प्रतीत होता हैं। एस. एन. दासगुप्ता अपनी पुस्तक–"इंडियन आइडियालिज्म" में लिखते है– "It is difficult to characterize the philosophy of the Upanishads either as subjective idealism or Objective Idealism or as Absolute Idealism after the model of European systems of thought". जैसा की हमने ऊपर बताया की भारतीय दर्शन में प्रत्ययवादी अवधारणा का आरम्भ उपनिषदों से होता है। उपनिषद् शब्द का मूल और प्राचीनतम भाव था– किसी गुप्त ज्ञान की प्राप्ति के लिए शिष्य का गुरु के समीप बैठना। विकास की दूसरी दशा में इसका अर्थ हुआ– वह गोपनीय ज्ञान या सिद्धान्त जो गुप्त स्थिति में प्रदान किया जाये। सामान्यतः उपनिषदों के लिए रहस्यम शब्द का प्रयोग किया जाता था। जिसका अर्थ 'रहति भवम्' या एकांत में बताया जाने वाला है। स्वयं उपनिषदों में ही 'इतिरहस्यम्', 'इत्युपनिषद्', आदि शब्द गुप्त सिद्धांतों के अर्थ में प्रयुक्त हुए है। ध्यातव्य है कि उपलब्ध उपनिषदों की संख्या सवा–सौ से भी अधिक है तथापि सर्वमान्य और महत्वपूर्ण उपनिषदों की संख्या अधिक नहीं है। शंकराचार्य ने ईशदि दस उपनिषदों पर ही भाष्य लिखा है। निम्न श्लोक में दस उपनिषद् गिनाये गए है–

'ईश– केन– कठ– प्रश्न– मुंड– माण्डुक्य– तित्तिरीः एतरेयच छांदोग्यं वृहदारण्यकन्तथा'।[2]

अर्थात् मुख्य दस उपनिषद् ईश, केन, कठ, प्रश्न, मुंडक, माण्डुक्य, ऐतरेय, तैत्तिरीय, छान्दोग्य और वृहदारण्यक है। इस सूची में कौषीतकी, मैत्री (मैत्रायणी) और श्वेताश्वतर का नाम जोड़ देने पर तेरह मुख्य उपनिषदों की संख्या पूरी हो जाती है।

दासगुप्ता अपनी पुस्तक– "इंडियन आइडियालिज्म" में उपनिषदों में प्राप्त दर्शन की स्पष्ट व्याख्या करते हुए लिखते है कि–उपनिषदों में प्राप्त दार्शनिक विचार कोई व्यवस्थित और समन्वित एकता को प्रस्तुत नहीं करते और न ही यह कहा जा सकता है कि उन्हें किसी एक व्यक्ति विशेष द्वारा किसी एक समय में लिखा गया है। वे बिखरे हुए विचार है जो विशेष समूहों में एक साथ बंधे हुए है जिनकी एकता कभी–कभी अधिक कृत्रिम दिखाई पड़ती है लेकिन ये विशेष युग के लोगों के समूहों के विशेष दार्शनिक संस्कृति को दर्शाते है और इन विचारो से इस तथ्य को अनदेखा नहीं किया जा सकता कि उस युग में अन्य दार्शनिक समूहों में दूसरे प्रकार के विचार मौजूद नहीं थे। हालाँकि विचार की विविध धाराएं उपनिषदीय युग को सिंचते हुए पाई जाती है फिर भी प्रत्ययवादी विचार इतने प्रबल है कि उनकी अलग से समीक्षा करना संभव है।

दासगुप्ता ने उपनिषदों में जिस प्रकार के विचारो का प्रत्ययवादी विचार के अंतर्गत उल्लेख किया है, बाद के दर्शनों में उन्हें उस तरह से व्यक्त नहीं किया गया। सामान्यता उपनिषदों में दार्शनिक स्थिति को तर्क के आधार पर सिद्ध करने का प्रयास नहीं किया, इसके विपरीत उपनिषदीय प्रत्ययवादी अपने रहस्यमय या सहज अनुभव का आभास कराते है जो उनका 'गुप्त ज्ञान' (secret wisdom) है। उपनिषदों में एक ही परम तत्त्व की बात हर जगह की गयी है। वह परम तत्त्व ब्रह्म है। 'ब्रह्म' शब्द 'बृह' धातु से बना है, जिसका अर्थ बढ़ना, फैलना होता है। अतः ब्रह्म को जगत का कारण तथा विश्वाधार घोषित किया गया है। इसी सन्दर्भ में छान्दोग्य उपनिषद् में ब्रह्म के लिए तज्जलान्[4] शब्द का प्रयोग किया है। अर्थात् ब्रह्म वह तत्त्व है (तत) जिससे सारा विश्व उत्पन्न होता है (ज अर्थात् जायते), जिसमें वह अंत में लीन होता है (ल अर्थात् लीयते), और जिसमें वह जीवित रहता है (अन)– 'तज्जलान'।

इसी प्रकार केनोपनिषद् में ब्रह्म की व्याख्या करते हुए कहा गया है कि– जिसे वाणी बोल नहीं सकती, किन्तु जिसके द्वारा वाणी बोलती है। जिसे बुद्धि नहीं जान सकती, किन्तु जिसके द्वारा बुद्धि जानती है। जिसे आँखें देख नहीं सकती, किन्तु जिसके द्वारा आँखें देखती है। जिसे कान नहीं सुन सकते, किन्तु जिसके द्वारा कान सुनते है। जो स्वयं साँस नहीं लेता किन्तु जिसके द्वारा साँस लेना संभव है तुम उसी को ब्रह्म जानो।[5] इस प्रकार ब्रह्म के स्वरूप की व्याख्या करते हुए कहा गया है कि– 'ब्रह्म जिसको ज्ञात नहीं है, उसी को ज्ञात है और जिसको ज्ञात है वह उसे नहीं जनता। क्योंकि वह जानने वालो का बिना जाना हुआ है और न जानने वालो का जाना हुआ है।

"यस्यामतं तस्य मतं मतं यस्य न वेद सः। अविज्ञातं विजानतां विज्ञातमविजानताम्।"

अतः यह सभी ज्ञात और अज्ञात से भिन्न है। पुनःश्च तैत्तिरीय उपनिषद् में भी ब्रह्म को इस जगत का कारण माना गया है। यस्माज्जातं जगत्सर्वं यस्मिन्नेव प्रलीयते ।[6] पुनःश्च इसमें ब्रह्म के पांच कोशों का भी वर्णन है। जहाँ ब्रह्म की तुलना प्याज से की गयी है। जैसे–जैसे प्याज के उपरी छिलके निकलते है वैसे–वैसे प्याज का अंदरूनी भाग साफ दिखलाई पड़ने लगता है। किन्तु जिस प्रकार प्याज छिलको के अतिरिक्त कुछ नहीं है उसी प्रकार ब्रह्म इन कोशों (अन्नमय कोश, प्राणमय कोश, मनोमय कोश, विज्ञानमय कोश, आनंदमय कोश) के अतिरिक्त कुछ नहीं है।[7]

टी. एम. पी. महादेवन लिखते है कि–"प्राचीन ऋषियों ने जो असाधारण खोज की है वह यह है कि आत्मा ही ब्रह्म है, दोनों तक तथा अभिन्न है।[8] उपनिषद् दर्शन में ब्रह्म का आत्मा से तादाम्य बताया गया है। विषयी और विषय, द्रष्टा और दृश्य, प्रमाता और प्रमेय दोनों में एक ही तत्त्व प्रकाशित हो रहा है और जो दोनों में व्याप्त है और दोनों के पार भी है।[9] यह अभेद 'अयमात्मा ब्रह्म', 'तत् त्वमसि' आदि महावाक्यो से सिद्ध है। दासगुप्ता के अनुसार–'आत्मा और ब्रह्म की तादात्म्यता में ही उपनिषद् शिक्षा का सारांश निहित है'।[10] माण्डुक्य उपनिषद् में ब्रह्मात्मैक्य का विषद वर्णन किया गया है यथा– "सर्व ह्येतद्ब्रह्म अयमात्मा ब्रह्म सोअ्यमात्मा चतुष्पात" । अर्थात यह सब ब्रह्म ही है। यह आत्मा ही ब्रह्म है। यह आत्मा चार अंशों वाला है यथा– जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति और तुरीय। इस प्रकार ब्रह्म और आत्मा की एकाकारता विश्व की परम सत्ता के वास्तविक स्वरूप का पूर्ण रूप से साक्षात्कार कराती है। साथ ही एक आध्यात्मिक एवं अनंत सत्ता के रूप में प्रकट होती है।

पुनःश्च उपनिषदों में जगत की व्याख्या का आधार भी ब्रह्म को ही स्वीकार किया गया है। जैसे मुण्डक उपनिषद् में ब्रह्म को इस व्यावहारिक जगत का कारण भी माना है तो साथ ही उसे इस विश्व से परे भी मानता है।[11] इसके साथ ही अनेक उपमाओं के साथ तुलना करके इस जगत की व्याख्या की है यथा– जिस प्रकार मकड़ी अपने पेट से जाले को उत्पन्न करती है और फिर अपने भीतर ही निगल लेती है। जैसे पृथ्वी में विभिन्न औषधियां उत्पन्न होती है तथा जैसे मनुष्य के शरीर से केश और लोम उत्पन्न होते है, उसी प्रकार उस अक्षर ब्रह्म से यह विश्व प्रकट होता है।

"यथा उर्णनाभिः सृजते गृहण्ते च यथा पृथिव्यामोषधयः संभवन्ति।

यथा सतः पुरुषात्केशलोमानि तथा अक्षरात् संभवतीह विश्वम्।

अतः उपनिषदों में ब्रह्म को ही परम सत्ता या परम तत्त्व के रूप में स्वीकार किया गया है। तथापि ब्रह्म को शुद्ध आत्मा के द्वारा ही जाना जा सकता है। इस प्रकार उपनिषदों में प्रत्ययवादी तत्त्व ब्रह्म को शुद्ध आत्म तत्त्व के रूप में जानने में निहित है। जिन्हें उपनिषदों के महावाक्यो में व्यक्त किया गया है। जैसे छान्दोग्योपनिषद् का 'तत्वमसि' (वह तू है), वृहदारण्यक उपनिषद का 'अहम् ब्रह्मस्मि' (मै ब्रह्म हूँ), ऐतरेय उपनिषद् का 'प्रज्ञानं ब्रह्म' (प्रज्ञान ही ब्रह्म है) आदि। इस प्रकार ये चार महावाक्य

आत्मा और ब्रह्म का समानाधिकरण्य है। निष्कर्षतः उपनिषदीय प्रत्ययवादी दृष्टिकोण का सार शुद्ध आत्मा को एकमात्र सत्ता के रूप में देखने में है। परिणाम स्वरूप शुद्ध आत्मा को एकमात्र सत्ता स्वीकार करने के कारण वह भौतिक जगत की सत्ता को अस्वीकार करते है। कुछ उपनिषदों में भौतिक जगत के अनुभवों को भ्रम या स्वप्न–आभास माना गया है।

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर हम यह कह सकते है कि उपनिषदों से प्राप्त यह तथ्य की ब्रह्म को बुद्धि या इन्द्रिय ज्ञान से नहीं जाना जा सकता किन्तु उसे जानने का अन्य कोई दूसरा माध्यम है, रहस्यवाद की और संकेत करता है। परम सत् का स्वरूप न ही आत्मनिष्ठ है और न ही वस्तुनिष्ठ बल्कि दोनों का ही अस्तित्व परम सत् से उत्पन्न होता है। इसलिए एस. एन. दासगुप्ता इसे "रहस्यवादी निरपेक्ष प्रत्ययवाद (Mystical Idealistic Absolutism) की संज्ञा देते है।[12]

बौद्ध दर्शन के महायान सम्प्रदाय में प्रत्ययवादी अवधारणा

द्वितीय चरण में प्रत्ययवादी अवधारणा का विकास बौद्ध दर्शन के महायान संप्रदाय में दिखाई पड़ता है। बौद्ध दर्शन के दो मुख्य संप्रदाय यथा– हीनयान और महायान है। हीनयान के अंतर्गत दो निकाय है– वैभाषिक और सौत्रान्तिक। वही महायान के दो निकाय– माध्यमिक–शून्यवाद और योगाचार–विज्ञानवाद। इन निकायों के वर्गीकरण का आधार जगत के अस्तित्व सम्बन्धी सिद्धांत है। अर्थात इस व्यवहारिक जगत में किसी बाह्य अथवा आंतरिक (मानसिक) पदार्थ का अस्तित्व है या नहीं। हीनयान संप्रदाय के दोनों ही निकाय बाह्य जगत एवं आंतरिक चित्त दोनों की ही स्वतंत्र सत्ता में विश्वास करते है। दोनों में मुख्य अंतर यह है कि जहाँ वैभाषिक बाह्य जगत के ज्ञान को प्रत्यक्षजन्य स्वीकार करते है वही सौत्रान्तिक उसे अनुमानजन्य स्वीकार करते है।

माध्यमिक दर्शन के सबसे महान दार्शनिक नागार्जुन थे। वह भगवान बुद्ध की ही भांति मध्यम मार्गी है। इसी आधार पर वह परम सत् की विशद व्याख्या करते हुए कहते है कि– यदि हम किसी भी वस्तु के वास्तविक स्वरूप को बुद्धि के आधार पर समझने का प्रयास करेंगे तो हमें सदैव ही मार्ग–च्युत होना पड़ेगा क्योंकि वस्तु का स्वरूप बुद्धि से परे है, अनिर्वचनीय है।[13] उनके अनुसार शून्य ही एकमात्र तत्त्व है। यह शून्य न तो सत् है, न असत् है, न सत् और असत् दोनों है और न इन दोनों से भिन्न ही है। यह बुद्धि की चतुष्कोटियों से परे एक विलक्षण तत्त्व है। अतः परम सत् अनिर्वचनीय है। यहाँ ध्यान देने वाली बात यह है कि इस सिद्धांत का मूल विचार हमें उपनिषदों में प्राप्त होता है जहाँ याज्ञवल्क्य परम तत्त्व की व्याख्या नेति–नेति के आधार पर करते है।

पुनःश्च नागार्जुन जगत की व्याख्या करने के लिए दो प्रकार के सत्य की व्याख्या करते है। पहले संवृत्ति सत्य और दूसरा परमार्थ सत्य। संवृत्ति सत्य से तात्पर्य व्यावहारिक जगत से है। वही

परमार्थ सत् बुद्धि के परे, अनिर्वचनीय एवं निःस्वभाव है। इस अवस्था में ज्ञाता–ज्ञान–ज्ञेय आदि का भेद समाप्त हो जाता है। इस प्रकार यह प्रपंच–रहित, शांत एवं शिव–रूप है।

पुनःश्च प्रत्ययवादी अवधारणा का दूसरा रूप महायान संप्रदाय के योगाचार–विज्ञानवाद निकाय में मिलता है। विज्ञानवादी चेतना को ही परम तत्त्व मानते है। यह आचार्य असंग के दर्शन में 'आलय विज्ञान' के रुप में तथा वसुबन्धु के दर्शन में 'विज्ञप्तिमात्रता' के रूप में परिलक्षित होता है। आचार्य असंग के अनुसार विज्ञान ही एकमात्र सत्य है और उसको छोड़ कर समस्त सताएं मिथ्या है। चेतना विज्ञान का ज्ञान ही बुद्धसम्प्रत तथता ज्ञान है, यही तत्त्व ज्ञान है।

विकल्पमात्रं त्रिभवं बाह्यमर्थं न विद्यते। चित्तमात्रावतारेण प्रज्ञा तथागती मता।[14]

पुनःश्च आचार्य वसुबन्धु 'विज्ञप्तिमात्रता' की निरपेक्ष सत्ता को प्रतिपादित करते है। उनके अनुसार दृश्य जगत मिथ्या है। 'विज्ञप्तिमात्रता' ही एकमात्र सत् है। आचार्य दिङ्नाग ने अपने दर्शन में क्षणभंगवाद का सार्वभौम प्रयोग कर विज्ञानवाद को एक नया रूप प्रदान किया। उनके अनुसार बाह्य वस्तुओं का अस्तित्व नहीं है, वे प्रत्ययमात्र है और जो बाह्य वस्तुओं के रूप में अवभाषित होती है। पुनः धर्मकीर्ति आचार्य दिङ्नाग के प्रत्ययवाद को विषयीनिष्ठ प्रत्ययवाद के रूप में विकसित करते है। उन्होंने 'अर्थक्रियाकारित्व' को सत् का लक्षण माना। उनके अनुसार परम सत् 'विज्ञप्ति' है जिससे बाह्य जगत की प्रतीति होती है।

इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि– योगाचार दर्शन के इतिहास में एक ही विचारधारा अविछिन्नरूप से विकसित हुई। लेखकों द्वारा प्राप्त यह युक्ति सही प्रतीत होती है कि– इस निकाय के दार्शनिकों ने दार्शनिक इतिहास की दिशा ही परिवर्तित करके सत्ता का स्थान बाह्य जगत से हटा कर मनुष्य के अंतर्जगत में स्थापित कर दिया।

अद्वैत वेदांत में प्रत्ययवादी अवधारणा

भारतीय दर्शन में प्रत्ययवादी अवधारणा का अंतिम चरण हमें अद्वैत वेदांत दर्शन में प्राप्त होता है। अद्वैत वेदांत की सम्पूर्ण विचारधारा 'प्रस्थान–त्रयी' की विचारधारा पर आधारित है। 'प्रस्थान–त्रयी' के अन्तर्गत उपनिषद्, ब्रह्म–सूत्र तथा श्रीमद्भगवद्गीता है। इसी के आधार पर वह ब्रह्म सिद्धांत की स्पष्ट व्याख्या करते है। उनका केन्द्रीय सिद्धान्त ब्रह्म का सिद्धान्त है। वह एक मात्र निरपेक्ष तत्त्व के रूप में ब्रह्म को ही स्वीकार करते है, जो प्रत्यक्ष का विषय नहीं है। अतः यह एक अतेन्द्रिय सत्ता है। अद्वैत वेदांत में ब्रह्म के स्वरूप की व्याख्या निषेधात्मक रूप में की गयी है। उन्होंने उपनिषदों के नेति–नेति सिद्धान्त को आधार बनाया है। उनके अनुसार जीव, जगत, सृष्टि आदि सत्य नहीं है। ऐसा कहा जाता है कि–

शंकराचार्य का दर्शन उपनिषद् दर्शन की पराकाष्ठा है। अतः उपनिषद् दर्शन की भांति शंकर भी ब्रह्म को ही एकमात्र सत् स्वीकार करते है। उनके दर्शन का मूलमंत्र है कि–

"श्लोकार्द्धेन प्रवक्ष्यामि यदुक्तं ग्रन्थ्कोटिभिः। ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या जीवों ब्रह्मौव नापरः।[15]

अर्थात् जिन्हें करोड़ों ग्रंथों में कहा गया है कि उसे आधे श्लोक के माध्यम से कहा जा सकता है कि एकमात्र ब्रह्म ही सत् है, जगत मिथ्या है और जीव और ब्रह्म अलग नहीं, क्योंकि "अबाध्यत्वं लक्षणं सत" और ब्रह्म से भिन्न होने के कारण यह प्रपंचात्मक जगत मिथ्या है। शंकर ब्रह्म को प्रतिस्थापित करने के लिए आनुभविक विधि का प्रयोग करते है। वह सत् के स्वरूप को निर्धारित करते हुए लिखते है कि– सत् वह है जो तीनों कालों में अबाधित हो। अर्थात् जो सदैव एकरूप हो– "एकरूपेण हि अवस्थितों योऽर्थः सः परमार्थः"।[16] ब्रह्म के लिए आत्मा शब्द का भी प्रयोग किया जाता है। यह ज्ञाता, ज्ञान और ज्ञेय की व्यवहारिक त्रिपुटी से परे, इसका अधिष्ठान है। क्योंकि तर्क प्रत्येक पदार्थ को केवल विषय रूप में ही ग्रहण कर सकता है और यह विशुद्ध आत्मतत्त्व या ब्रह्म तत्त्व विषय नहीं बन सकता।

विज्ञातारमरे ! केन विजानीयात् ?[17]

शंकराचार्य जगत की व्याख्या करते हुए ब्रह्म को उसका उपादान और निमित्त कारण दोनों ही स्वीकार करते है। ब्रह्म जगत का अभिन्ननिमित्तेपादानकारण है। इस सन्दर्भ में वह ब्रह्म–विवर्तवाद की स्थापना करते है। उनके अनुसार जगत ब्रह्म की प्रतीति मात्र है। माया या अविद्या के कारण ब्रह्म जीव और जगत के रूप में प्रतीत होता है। अतः हम कह सकते है कि शंकराचार्य के अनुसार परम सत्ता (ब्रह्म) साधारण रूप से आत्मनिष्ठ और वस्तुनिष्ठ समझी जाने वाली सभी सत्ताओ से ऊपर और परे है। दूसरे शब्दों में कहे तो यह दोनों ही निरपेक्ष चेतन सत्ता की ही अभिव्यक्तियाँ है या उसकी छाया मात्र है।

निष्कर्षतः प्रत्ययवाद के अनुसार विश्व का मूल तत्त्व चेतन या आध्यात्मिक है। यदि कोई पदार्थ भौतिक लगता भी है तो वह प्रतीति मात्र है, वास्तविक नहीं। फलस्वरूप हम कह सकते है कि भारतीय चिंतन परंपरा में प्रत्ययवाद का आरम्भ उपनिषदों से होता है और इसका चरमोत्कर्ष शंकराचार्य के अद्वैत वेदांत में परिलक्षित होता है। जहाँ प्रत्ययवाद की व्याख्या को भिन्न–भिन्न रूप में व्याख्यित करने का प्रयास किया गया।

सन्दर्भ सूची

1. श्रीकृष्ण सक्सेना , भारतीय दर्शन में चेतना का स्वरूप , पृष्ठ 12.
2. एन. के. देवराज, "भारतीय दर्शनशास्त्र का इतिहास, पृष्ठ 55.
3. एस. एन. दासगुप्ता, '–"इंडियन आइडियालिज्म", पृष्ठ 27–28.
4. छान्दोग्य ३–१४.
5. चन्द्रधर शर्मा, ' भारतीय दर्शन' पृष्ठ– 12
6. तैत्तिरीय 3–1,
7. संगमलाल पाण्डेय , 'भारतीय दर्शन का सर्वेक्षण', पृष्ठ– 39
8. एस. एन. दासगुप्ता, 'हिस्ट्री ऑफ इंडियन फिलोसोफी', पृष्ठ– 45
9. चन्द्रधर शर्मा, 'भारतीय दर्शन' पृष्ट–10
10. टी. एम. पी. महादेवन, 'दी फिलोसोफी ऑफ अद्वैत', पृष्ठ– 179
11. एतस्मात् जायते प्राणों मनः सर्वेन्द्रियाणि च। खं वायुः ज्योतिरापः पृथिवी विश्वश्य धारिणी।
12. एस. एन. दासगुप्ता, '–"इंडियन आइडियालिज्म", पृष्ठ–31
13. संगमलाल पाण्डेय , 'भारतीय दर्शन का सर्वेक्षण', पृष्ठ– 152
14. लंकावतारसूत्र , पृष्ठ– 46.
15. स्वामी सत्यानन्द सरस्वती, "ब्रह्मसूत्र शंकर भाष्यम्" पृष्ठ– 15
16. ब्रह्मसूत्र भाष्य– 2/1/11-
17. वृहदारण्यक उपनिषद्, 2/4/14.

सन्दर्भ ग्रन्थ

1. सक्सेना, श्रीकृष्ण, "भारतीय दर्शन में चेतना का स्वरूप" चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी (1969).
2. पाण्डेय, संगम लाल, "भारतीय दर्शन का सर्वेक्षण", सेंट्रल पब्लिशिंग हाउस, इलाहाबाद (2002).
3. शर्मा, चन्द्रधर, "भारतीय दर्शन– आलोचन और अनुशीलन", मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली (2004).
4. देवराज, एन. के. "भारतीय दर्शनशास्त्र का इतिहास", हिंदुस्तानी एकेडेमी, इलाहाबाद (1941)
5. सरस्वती, स्वामी सत्यानन्द, "ब्रह्मसूत्र शंकर भाष्य", चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान, दिल्ली (2013).
6. वृहदारण्यक, तैत्तिरीय, छान्दोग्य उपनिषद् शांकरभाष्य और हिंदी अनुवाद सहित, गीताप्रेस, गोरखपुर (1995).
7. वैद्य, प. ल., "लंकावतारसूत्र", दरभंगा, (1951).
8. Raju, P. T., "Indian Idealism and Modern Challenges", Punjab University Publication Bureau, Chandigarh (1961).

9. Dasgupta, S. N. “Indian Idealism”, Cambridge University Press, Cambridge (1933).

----“The History of Indian Philosophy”, Vol. 1, Motilal Banarasidass Publishers, Varanasi (2000).

10. Mahadevan, T. M. P., “The Philosophy of Advaita”, Bhartiya kala prakashan, Delhi (2011).